IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्रतिबंधित हिंदी उपन्यास 'पैरोल पर' में राष्ट्रीय चेतना

ललित कुमार
सहायक आचार्य – हिंदी
राजकीय महाविद्यालय, कुम्भलगढ़, राजस्थान

सार (Abstract): स्वाधीनता-संग्राम के काल में प्रतिबंधित हिंदी साहित्य राष्ट्रीय चेतना के प्रसार का सशक्त माध्यम रहा है। ब्रजेन्द्रनाथ गौड़ का उपन्यास 'पैरोल पर' (1943), जिसे ब्रिटिश सरकार ने राजद्रोह एवं राष्ट्रीय एकता भंग करने के आरोपों के अंतर्गत प्रतिबंधित किया था, स्वतंत्रता आंदोलन की बहुआयामी वैचारिक स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है। यह उपन्यास 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन की पृष्ठभूमि में साम्यवाद, गांधीवाद और क्रांतिकारी विचारधारा के आपसी अंतर्संबंधों एवं तनावों को उभारता है। उपन्यास में मजदूर आंदोलन, वर्ग-संघर्ष, आर्थिक शोषण, सामाजिक असमानता और राष्ट्रवादी संघर्ष को केंद्र में रखकर राष्ट्रीय चेतना की जटिल संरचनाओं का चित्रण किया गया है। अमिता, शीला सरकार और कपूर जैसे पात्रों के माध्यम से लेखक ने महिलाओं की सक्रिय राजनीतिक भागीदारी, क्रांतिकारी जोखिम, त्याग, वैचारिक द्वंद्व तथा स्वतंत्रता-आवेग को सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है। पात्रों की व्यक्तिगत अनुभूतियों और सामूहिक संघर्ष के माध्यम से यह उपन्यास यह दर्शाता है कि स्वतंत्रता-संग्राम केवल राजनीतिक मुक्ति का संघर्ष नहीं था, बल्कि आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के व्यापक उत्थान की प्रक्रिया थी। इस शोध में उपन्यास के विभिन्न प्रसंगों का विश्लेषण कर यह प्रतिपादित किया गया है कि 'पैरोल पर' राष्ट्रीय चेतना के विविध स्तरों—राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक—की गहन अभिव्यक्ति करता है और इसी कारण स्वतंत्रता-कालीन राष्ट्रवादी साहित्य में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

Keywords: राष्ट्रीय चेतना, प्रतिबंधित साहित्य, पैरोल पर, ब्रजेन्द्रनाथ गौड़, भारत छोड़ो आंदोलन, क्रांतिकारी आंदोलन, गांधीवाद, साम्यवाद, वर्ग-संघर्ष, मजदूर आंदोलन, स्वतंत्रता-संग्राम, महिलाओं की भूमिका, आर्थिक शोषण, सामाजिक असमानता, राष्ट्रवादी साहित्य, क्रांति-चेतना।

स्वाधीनता-संघर्ष काल में प्रतिबंधित हिंदी कथा साहित्य में 'पैरोल पर' उपन्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस उपन्यास की विषयवस्तु 1942 ई. के भारत छोड़ो आंदोलन पर आधारित है। क्रांतिकारी और राजनीतिक घटनाक्रमों के चित्रण के कारण इसे अंग्रेजी सरकार द्वारा भारतीय दंड संहिता की धाराओं—'124ए' (राजद्रोह), '153ए' (वर्गीय शत्रुता), '153बी' (राष्ट्रीय एकता) और '108' (उकसावा) तथा भारतीय सुरक्षा अधिनियम-1939 (The Defence of India Act, 1939) के तहत प्रतिबंधित कर दिया गया। 1943 ई. में प्रकाशित एवं प्रतिबंधित इस उपन्यास के लेखक ब्रजेन्द्रनाथ गौड़ हैं। सेवकराम नागर द्वारा लखनऊ से प्रकाशित एवं पं. मन्नालाल तिवारी, शुक्ला प्रिंटिंग प्रेस द्वारा मुद्रित यह उपन्यास लगभग

डेढ़ सौ पृष्ठों में विस्तृत है।

स्वयं लेखक ने उपन्यास के संबंध में लिखा है— "इस उपन्यास का ढाँचा कुछ एडवेंचरस लोगों की तूफानी जिंदगी के घात-प्रतिघात, उथल-पुथल और कशमकश की नींव पर खड़ा किया गया है। इसमें राजनीति नहीं है; राजनीति से किसी हद तक, संबंधित व्यक्ति जरूर हैं; जिन्हें लेखक ने बिलकुल नहीं छुआ है – उन्हें उन्हीं के ढंग से चलने दिया है, उन्हीं के ढंग से बोलने दिया है और उन्हीं के ढंग से सारे वातवरण को देखने दिया है।"[1]

उपन्यास की कथावस्तु एक क्रांतिकारी दल के इर्द-गिर्द बुनी गई है। रस्तोगी कानपुर में किसी मिल का मालिक है, अमिता उसकी पत्नी है। कपूर कानपुर के मजदूरों के अधिकारों के लिए लड़ने वाले किसी संगठन का नेता है। कानपुर में मजदूरों ने अपनी माँगों को मनवाने के लिए हड़ताल का आयोजन किया है। इस हड़ताल को खत्म करने के उद्देश्य से मजदूर संघ की ओर से कपूर और मिल मालिकों की ओर से रस्तोगी के बीच एक बैठक का आयोजन रस्तोगी के घर पर रखा जाता है। अमिता भी इस बैठक में सक्रिय भूमिका निभाती है।

उपन्यास के आरंभ से ही अमिता का झुकाव कपूर की ओर स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। मजदूरों-किसानों के लिए तथा देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्षशील व्यक्ति को नायक के रूप में प्रस्तुत करने एवं उसके महत्त्व को दर्शाने के उद्देश्य से संभवतः लेखक इस युक्ति का प्रयोग करता है कि उपन्यास में आने वाले दोनों मुख्य महिला पात्र, अमिता और शीला, कपूर की ओर आकर्षित होते हैं।

बैठक एक सकारात्मक नतीजे पर समाप्त होती है। रस्तोगी मजदूरों की सारी माँगें मान लेने के लिए तैयार हो जाता है, लेकिन बदले में कपूर की ओर से कुछ रियायत की उम्मीद करता है। कपूर संघ के अन्य सदस्यों से इस विषय में परामर्श करने के बाद निर्णय लेने की बात कहता है। अंततः बिना किसी रियायत के मजदूरों की सारी माँगें स्वीकार कर ली जाती हैं।

मजदूरों के प्रति रस्तोगी की अभिवृत्ति सख्त नहीं दिखाई गई है, जैसा कि आमतौर पर मिल मालिकों के चरित्रों को दर्शाया जाता है। रस्तोगी प्रारंभ से ही मजदूरों द्वारा अपने अधिकारों की माँग करने को उचित मानता है। यही कारण है कि बाद में मिल मालिक संघ के सदस्य उस पर अविश्वास व्यक्त करते हैं। रस्तोगी अंत में कांग्रेस का सक्रिय सदस्य एवं नेता बन जाता है। हालाँकि सार्वजनिक रूप से वह क्रांतिकारी संगठन से दूरी बनाए रखता है, लेकिन उसकी सहानुभूति क्रांतिकारी संगठन के प्रति बनी रहती है। अमिता क्रांतिकारी संगठन की सक्रिय सदस्य बन जाती है और अपने घर में क्रांतिकारियों को शरण देने का कार्य करती है। मजदूर संघ का एक अन्य सदस्य शंकर, कपूर के रस्तोगी और अमिता के साथ अच्छे संबंधों का हवाला देकर कपूर को मिल मालिकों से मिला हुआ बता देता है। इस प्रकार, शंकर मजदूर संघ का नया नेता बन जाता है।

शीला सरकार बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलन की प्रमुख संगठनकर्ता है। क्रांतिकारी संगठन में नए सदस्य जोड़ने के उद्देश्य से ही वह कानपुर आई है। कानपुर में मजदूर संघ का एक सदस्य विजय, कपूर को शीला से मिलवाता है। शीला, कपूर

[1] पैरोल पर, ब्रजेन्द्र नाथ गौड़, लखनऊ : शिवाजी बुक डिपो, 1943. पृ. 4.

को क्रांतिकारी संगठन में शामिल होने का आमंत्रण देती है, लेकिन कपूर हिंसा से अपनी सैद्धांतिक असहमति व्यक्त करता है और संगठन में जुड़ने से मना कर देता है– “मैं आप लोगों की राय से सहमत नहीं हूँ। हमारा देश फ़्रांस या रूस नहीं, भारतवर्ष है। मैं आप लोगों से क्षमा चाहता हूँ – मैं ऐसे किसी काम में शरीक नहीं हो सकता, जो हिंसा का प्रचार करें।”[2] अंततः मजदूर संघ के शंकर द्वारा लगाए गए आक्षेपों से आहत होकर कपूर कानपुर छोड़ देता है और बनारस चला जाता है।

बनारस में कपूर को जो कमरा रहने के लिए मिलता है, बाद में उसे पता चलता है कि वहाँ प्रसिद्ध क्रांतिकारी अनिल कुमार रह चुके थे। एनार्किस्ट पार्टी में ‘ग्रीक सोल्जर’ के नाम से प्रसिद्ध अनिल कुमार से कपूर भली-भाँति परिचित था और उससे अत्यंत प्रभावित भी था। कपूर, अनिल से मिलने के लिए बेचैन हो उठता है, लेकिन अनिल का पता उसे केवल शीला सरकार के माध्यम से ही मिल सकता था, और वह वापस कानपुर नहीं जाना चाहता था। जिस कमरे में अनिल रह चुका था, वहाँ कपूर के लिए रहना मुश्किल हो जाता है, और वह दो ही दिन बाद बनारस छोड़कर मिर्ज़ापुर चला जाता है।

उपन्यास के माध्यम से लेखक ने भारत-छोड़ो आंदोलन के काल में राष्ट्रभर में व्याप्त विभिन्न विचारधाराओं को दर्शाने का प्रयास किया है। किसानों और मजदूरों के आंदोलनों के माध्यम से साम्यवाद के प्रभाव, कपूर के माध्यम से गांधीवाद की विचारधारा, और अनिल कुमार के माध्यम से एनार्किस्ट पार्टी के प्रभाव[3] को भी चित्रित किया गया है। “जिस समय इंग्लैण्ड में राबर्ट ओवेन द्वारा सोशलिज्म (सामाजिक प्रजातंत्रवाद, या सुधारवाद या क्रमिक विकासवाद) का प्रचार हुआ, उसी समय फ़्रांस में प्रुदो एवं बाकुनी आदि ने एनार्किज्म की घोषणा की। अनार्किज्म का सिद्धांत है – ‘स्टेटलेस सोसायटी, इंडिविजुअल फ्रीडम, ह्युमन पर्सनालिटीज फ्रीडम और फ्रीडम ऑफ़ जुडिसियरी। वह पूँजी का विरोध नहीं करता है, बल्कि पूँजीवादी राज्य और पूँजीवादी समाज तथा जुडिसियरी का खुलकर विरोध करता है।”[4]

मिर्ज़ापुर में एक महीना रहने के बाद कपूर दिल्ली जाने के लिए बनारस रेलवे स्टेशन से लखनऊ की रेलगाड़ी में चढ़ता है, क्योंकि सीधे दिल्ली जाने वाली रेलगाड़ी कानपुर से होकर जाती है और वह कानपुर से बचना चाहता है। रेलगाड़ी में यात्रा के दौरान वह कुछ सहयात्रियों की बातचीत से यह समाचार पाता है कि कानपुर में मजदूरों पर पुलिस ने भयानक अत्याचार किए, जिसमें सैकड़ों मजदूर मारे गए और मजदूर संघ के नेता शंकर को गिरफ्तार कर लिया गया। इसी चर्चा के दौरान कपूर को अपनी प्रशंसा भी सुनने को मिलती है, लेकिन वह गुमनाम बने रहने का प्रयास करता है। उसे यह भी जानकारी मिलती है कि उसके नाम का भी वारंट जारी हो चुका है और उसे कभी भी गिरफ्तार किया जा सकता है।

---

[2] वही, पृ. 65.

[3] Anarchism in India, Jean Drèze. <https://theanarchistlibrary.org/library/jean-dreze-anarchism-in-india>

[4] क्रांतिपथ के पथिक. सत्यभक्त. आगरा: श्री प्रकाशचंद्र, 1973. पृ. 107.

फैजाबाद स्टेशन पर शीला सरकार अपने एक साथी को बताती है कि पुलिस को पता चल चुका है कि कपूर इस रेलगाड़ी में यात्रा कर रहा है, और लखनऊ स्टेशन पर उसकी गिरफ्तारी निश्चित है। अतः उसे किसी भी तरह रोका जाए। शीला के निर्देश पर कामरेड लाल नामक एक युवक कपूर को रोकता है, जिससे कपूर फैजाबाद स्टेशन पर उतरकर पुलिस से एक बार बचने में सफल हो जाता है।

फैजाबाद में आगे की सुरक्षा योजना बनाई जाती है, जिसमें शीला सरकार की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। शीला अमिता को भी लखनऊ बुला लेती है। बंगाली होने के बावजूद उत्तर प्रदेश की गतिविधियों में उसकी सक्रियता के संदर्भ में शीला स्वयं बताती है— "यू.पी. हमारी आशाएँ पूरी कर सकता है। बंगाल में केवल इतनी शक्ति है कि वह यू.पी. को हाथ पकड़कर आगे लाए। मैं तो कहती हूँ कि यू.पी. की सहायता और सहयोग के बिना देश की कोई भी क्रांति आगे नहीं बढ़ सकती। हमें यू.पी. में काम करना हैं, इसी लिए यहाँ की जानकारी रखना सबसे अधिक जरूरी है।"[5]

इस प्रकार, क्रांति और गांधीवाद को लेकर चर्चा करते हुए कामरेड लाल, शीला सरकार और कपूर अपनी यात्रा पूरी कर लखनऊ में विजय और अमिता के पास पहुँचते हैं। इसके बाद कामरेड लाल, शीला सरकार, कपूर, जमीर, अमिता और विजय एक स्थान पर एकत्र होते हैं और गिरफ्तारी से बचने के साथ-साथ क्रांति के कार्यों को आगे बढ़ाने की योजना बनाते हैं। कपूर, यद्यपि सैद्धांतिक रूप से गांधीवाद का समर्थक बना रहता है, फिर भी गिरफ्तारी से बचने के लिए दल के सदस्यों के साथ रहने को विवश होता है।

उपन्यास में आगे चलकर अनिल कुमार और अमिता की भूमिकाएँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं। शंकर की मुखबिरी के कारण जब कपूर गिरफ्तार कर लिया जाता है, तब अनिल कुमार एक योजना बनाकर विजय के सहयोग से उसे जेल से भगाने में सफल होता है। जेल से भागने के बाद कपूर को अमिता के घर पर छिपाकर रखा जाता है, किंतु कपूर इस प्रकार छिपकर रहना स्वीकार नहीं कर पाता और भागने का प्रयास करता है, जिससे वह पुनः गिरफ्तार हो जाता है।

अमिता, कपूर की सुरक्षा को लेकर अत्यधिक चिंतित हो जाती है। इस स्थिति को देखते हुए अनिल कुमार संकल्प लेता है कि वह किसी भी हाल में कपूर को सुरक्षित ढूँढ़ लाएगा। किंतु जैसे ही वह अमिता के घर से बाहर निकलने ही वाला होता है, अमिता को जानकारी मिलती है कि बाहर पुलिस का कड़ा पहरा है। वह अनिल को आगाह करने के लिए दौड़ती है, परंतु गर्भावस्था के कारण संतुलन खो बैठती है और गिर पड़ती है। इस दौरान अनिल पुलिस की नज़रों से बचकर फरार होने में सफल हो जाता है।

इसके बाद अमिता को अस्पताल ले जाया जाता है, जहाँ डॉक्टर बताता है कि उसके गर्भस्थ शिशु की मृत्यु हो चुकी

[5] पैरोल पर, ब्रजेन्द्र नाथ गौड़, लखनऊ : शिवाजी बुक डिपो, 1943. पृ. 83.

है। अंततः अत्यधिक शारीरिक और मानसिक आघात के कारण अमिता स्वयं भी मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। उस समय रस्तोगी जेल में होता है। जब वह 'पैरोल पर' बाहर आता है, तब तक सब कुछ समाप्त हो चुका होता है। उसे अमिता की स्मृति में केवल एक मुरझाया हुआ फूल ही मिलता है।

इस प्रकार, उपन्यास मुख्य रूप से एक क्रांतिकारी दल के गिरफ्तारी से बचने के संघर्ष की कहानी प्रस्तुत करता है, जिसमें रोमांटिक प्रेम संबंधों को भी कथा में पिरोया गया है। उपन्यास के नायक कपूर के चरित्र में कई विरोधाभास स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। वह सैद्धांतिक रूप से गांधीवादी होने का दावा करता है, लेकिन अनिल कुमार को अपना आदर्श मानता है, शराब पीता है और एकाधिक स्त्रियों के साथ प्रेम संबंध स्थापित करने का प्रयास करता है।

कपूर और अमिता तथा कपूर और शीला के प्रेम प्रसंगों एवं वार्तालापों को अनावश्यक कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। फिर भी, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, राष्ट्रभक्ति एवं अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने वाले चरित्र को प्रेरणास्पद बनाने के लिए संभवतः इन प्रसंगों को कथानक में जोड़ा गया होगा। लेखक का उद्देश्य संभवतः यह रहा हो कि इस प्रकार के चरित्र आमजन के लिए अनुकरणीय बन सकें।

उपन्यास में राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय चेतना अत्यधिक प्रबल रूप से व्यक्त की गई है। यह चेतना विभिन्न स्वरूपों में प्रकट होती हुई देखी जा सकती है। उपन्यास के प्रारंभ में मजदूरों के अधिकारों के लिए आयोजित हड़ताल में मजदूर संघ द्वारा अपनी माँगों पर अड़े रहना और अंततः उन्हें प्राप्त कर लेना अन्याय पर अधिकारों की विजय का प्रतीक माना जा सकता है।

जब उपन्यास के प्रारंभ में कपूर मजदूर संघ के प्रतिनिधि के रूप में रस्तोगी और अमिता के समक्ष अपनी बात रखता है, तब वह पूरे आत्मविश्वास के साथ कहता है कि मजदूरों के साथ अन्याय नहीं होना चाहिए। इस वार्तालाप के माध्यम से मजदूरों के दृढ़ संकल्प और एकता का परिचय मिलता है। हड़ताल के दौरान, जब मजदूरों को काम नहीं मिलता और वे भूख से मरने की स्थिति में पहुँच जाते हैं, तब भी वे अपने संकल्प पर अडिग रहते हैं और अंततः अपनी माँगें मनवाने में सफल होते हैं। यह संघर्ष और प्रतिबद्धता की विजय है। मजदूरों के दर्द और उनके दृढ़ संकल्प को इस संवाद के माध्यम से समझा जा सकता है—

"अमिता ने कहा- 'आपकी हड़ताल तो खूब चल रही है।'

अख़बार मेज़ पर रखकर उसने भेदभरी दृष्टि से अमिता की मुस्कराती हुई आँखों के मादक भोलेपन को देखा और कहा – 'जी हाँ, उम्मीद भी है कि हड़तालों के इतिहास में इस हड़ताल का ख़ास महत्त्व होगा, हमें इतनी सफलता की तो आशा भी नहीं थी। इस बार मज़दूरों ने निश्चय कर लिया है कि भूखे मर जायेंगे, पर अधिकार लेकर मानेंगे।'

रस्तोगी ने कहा- 'तो आप लोगों ने निश्चय कर लिया है कि हमें चैन से न बैठने देंगे?' कपूर ने उपहास की हँसी हँसते हुए कहा- 'और आपने भी तो गरीब मज़दूरों को भूखों मारने का निश्चय किया है। आप यह नहीं सोचते कि जिनकी मेहनत से

आप लाखों रुपये कमाते हैं, उन्हें आप उस मेहनत के एवज में देते ही क्या हैं?"[6]

कपूर दो-टूक शब्दों में अधिकारपूर्वक अपनी बात रस्तोगी और अमिता के सामने रखता है – "कपूर ने खाली प्याला रखते हुए गम्भीरता से कहा- 'आप जो कुछ भी समझे, लेकिन यदि शान्तिपूर्ण सुलह चाहेंगे, तो हर हालत में मज़दूरों के अधिकार उन्हें देने ही पड़ेंगे।"[7]

मजदूर-हित में कपूर पूरी तरह कर्मठ रहता है। जब निर्णय लेने की बात आती है, तो वह संगठन के अन्य सदस्यों के साथ सलाह-मशविरा करके निर्णय लेने पर जोर देता है, क्योंकि वह नहीं चाहता कि उससे कोई भी गलती हो। मजदूरों के हितों एवं अधिकारों से थोड़ा भी समझौता करने की बात जब कपूर के सामने रखी जाती है, तब वह अपनी दृढ़ता और प्रतिबद्धता स्पष्ट करता है— "कपूर ने दृढ़ता से कहा- 'मज़दूरों के सम्बन्ध में कुछ भी तय करना मुझ अकेले के हाथ में तो नहीं है, फिर मज़दूरों ने अब यह तय कर लिया है कि भूखों मर जायेंगे, लेकिन अधिकारों से वंचित रहकर काम न करेंगे; तो कैसे आपको यह विश्वास दिलाऊँ कि आप जो चाहेंगे वह हो जायेगा? और फिर मज़दूर आप लोगों द्वारा किये गये अन्याय ही क्यों सहते जायें?"[8]

कपूर पूँजीपतियों के वैभव विलास से भी घृणा करता है। रस्तोगी से वह कहता है कि जिन मजदूरों के कमाए धन के सहारे तुम लोगों ने जो ये वैभव-विलास की वस्तुएँ एकत्रित की है, क्या कभी उन गरीब मजदूरों के घरों को देखा है – "फिर रस्तोगी की ओर देख कर दृढ़ता से कपूर बोला – 'लेकिन आपको उनकी पूरी शर्तें माननी ही होंगी। आप कभी मज़दूरों की बस्ती में जाएँ और अपने इस विलास भवन से उनकी झोपड़ियों की तुलना करें, तो मालूम हो कि आप किस आदर्श को निभा रहे हैं।"[9]

इसके माध्यम से उपन्यासकार ने साम्यवाद के मूल तत्त्वों—असमानता और वर्ग-संघर्ष—को अभिव्यक्ति दी है। मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, ट्रोट्स्की और आगे के सभी साम्यवादी सिद्धांतकार मूल रूप से वर्ग-संघर्ष पर बल देकर ही असमानता को समाप्त करना चाहते थे। साम्यवादी दल के घोषणापत्र के रूप में प्रसिद्ध कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स ने लिखा है कि "अब तक विद्यमान समस्त समाज का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास है।"[10]

उपन्यास में अमिता का चरित्र एक दृढ़, जागरूक और अन्याय का विरोध करने वाली नारी के रूप में चित्रित किया

---

[6] पैरोल पर, ब्रजेन्द्र नाथ गौड़, लखनऊ : शिवाजी बुक डिपो, 1943. पृ. 10.

[7] वही, पृ. 12.

[8] वही, पृ. 13.

[9] वही, पृ. 14.

[10] "The history of all hitherto existing society is the history of class struggles." - Manifesto of the Communist Party, Marx/Engels Selected Works, Vol. One. Karl Marx and Frederick Engels. Moscow: Progress Publishers, 1969. P. 98.

गया है। वह प्रारंभ से ही मजदूरों की माँगों का समर्थन करती है और रस्तोगी पर अपना प्रभाव डालकर उन्हें मनवाने के लिए पूरा जोर लगाती है। अमिता के प्रभाव का ही यह परिणाम होता है कि रस्तोगी मजदूरों की सभी माँगों को बिना किसी शर्त के मान लेता है। अमिता के चरित्र के बारे में जानकारी देते हुए उपन्यासकार ने लिखा है –

“वह कालेज में सदा राजनीति पर गम्भीरता से सोचने वाली छात्राओं में से थी और उसकी सहानुभूति गरीब-मज़दूरों के प्रति भी थी। हड़तालियों की तो वह सहायता भी करती थी और कालेज में ही कोई बात होती तो विरोध की आवाज़ सबसे पहले वही उठाती। उसे इस बात का श्रेय था कि कालेज में कई बार सफलतापूर्वक हड़तालें चलीं और विद्यार्थी अपने हक पा सके। स्वामी उसके मनोभावों से परिचित है, तभी तो अपने पारिवारिक-संस्कारों के विरुद्ध भी जाकर आम जनता के सामने उसे आने देते हैं, वे पत्नी को अपने बेजा अधिकारों की श्रृंखला में जकड़ कर नहीं रखना चाहते। वे मानते है कि नारी को स्वतंत्रता पाने का अधिकार है।”[11]

उपन्यास में कपूर के चरित्र को बहुत उज्ज्वल रूप में चित्रित किया गया है। कपूर अन्याय के खिलाफ संघर्ष में अपनी सुविधाओं को भी भूल जाता है। जब वह रस्तोगी और अमिता के साथ मजदूरों की माँगों के विषय पर बातचीत करके लौटता है, तब पैसे न होने के कारण पार्टी कार्यालय तक पैदल चलता है, जिससे उसे लू लग जाती है और वह बीमार हो जाता है। उसके पास दवाओं के लिए भी पैसे नहीं होते, लेकिन वह मजदूरों के कार्य को प्राथमिकता देता है। मजदूरों के अधिकारों के विषय में किसी भी प्रकार की लापरवाही उसे स्वीकार्य नहीं होती। अमिता, कपूर के इन्हीं गुणों की कायल हो जाती है –

“दो बार स्वामी के सहकारी के साथ वह मज़दूरों की सभा में भी गई थी और दोनों ही बार कपूर को बोलते देख आई थी, उसे आश्चर्य हुआ कि वह स्वामी को प्राणों से अधिक प्यार करती है, तब कपूर की ओर क्यों आकर्षित हुई, वह अपने मन के एक कोने में उठने वाली कसक में कपूर के अभाव का स्पन्दन सुनती है। आज वह विवाहिता है, स्वामी को प्यार करती है, फिर भी कपूर के प्रति उसके मन में प्रेम और आदर के भाव उठ आये हैं। कपूर में ऐसा क्या है, जो वह उसके बिलकुल पास रहना चाहती है!”[12]

यहाँ अमिता के माध्यम से उपन्यासकार एक प्रतिमान स्थापित करते हुए नजर आते हैं, जिसमें महिलाओं को गरीब-मजदूरों के लिए मर-मिटने वाले समर्पित पुरुषों के सामने नतमस्तक होते हुए और उनके प्रेम में पड़ते हुए दिखाया गया है। निश्चित रूप से उपन्यासकार ने इसका एक लाभ यह देखा होगा कि इस प्रकार के प्रतिमान के बनने से राष्ट्र को मातृभूमि पर मर-मिटने के लिए तत्पर युवा मिल सकेंगे। तत्कालीन साहित्य में देशभक्ति को नायक के लिए एक प्रमुख गुण के रूप में दर्शाया जाने लगा, जहाँ इस गुण के समक्ष शारीरिक सौंदर्य, बलिष्ठता और धन फीके पड़ जाते हैं। निस्संदेह, इस प्रतिमान से प्रभावित होकर अनेक भारतीय नवयुवक स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े थे।

[11] पैरोल पर, ब्रजेन्द्र नाथ गौड़, लखनऊ : शिवाजी बुक डिपो, 1943. पृ. 18.
[12] वही, पृ. 19.

अमिता न केवल कपूर के प्रति मात्र आकर्षित थी, बल्कि उसके संपर्क में आने के बाद अब वह भी देशभक्ति के गीत गाने लगी और राजनीतिक खबरों से स्वयं को अद्यतन रखने लगी। उपन्यास में एक स्थान पर अमिता एक देशभक्ति-गीत गाती है, जिसके लिए उपन्यासकार ने लिखा है कि यह गीत 'कानपुर के बच्चे-बच्चे की जबान पर थिरक रहा था' –

"शहीदों की टोली में नाम लिखा लो, कफ़न सर पे बाँधो, चलो आगे-आगे।

कफ़न सर पे बाँधो, बढ़ो आगे-आगे, सुबह के सितारे को शाम दिखा दो।

शहीदों को टोली में नाम लिखा लो।"[13]

स्वाधीनता-संग्राम में गाँधी के आगमन और चंपारण एवं खेड़ा सत्याग्रह के सफल संचालन के बाद भारतीय जनमानस में न केवल गाँधी के प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हुई, बल्कि साथ ही अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता भी बढ़ी। भारतीय जनता को अपने अधिकारों के लिए सचेत करने और अन्याय के विरुद्ध अहिंसात्मक साधन उपलब्ध कराने के लिए गाँधी को सदियों तक याद किया जाता रहेगा। तत्कालीन राष्ट्रवादी साहित्य में अधिकार-चेतना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

साम्राज्यवादी हितों की पोषक ब्रिटिश सरकार के लिए यह असह्य था कि जनता अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो। इस कारण, जहाँ भी ऐसे साहित्य में अधिकारों के लिए संघर्ष करने की प्रवृत्ति दर्शाई गई, ब्रिटिश सरकार ने उसे प्रतिबंधित करने का प्रयास किया। इस उपन्यास में मजदूर वर्ग अपने अधिकारों के प्रति पूरी तरह जागरूक है। हड़ताल करने वाला यह वर्ग किसी के बहकावे में नहीं आता, बल्कि अपने हितों को स्वयं समझने में सक्षम है।

यहाँ यह भी दर्शाया गया है कि अभी जनता के बड़े हिस्से में अधिकार-चेतना आना बाकी है। इसी कारण, कुछ लोग ऐसी हड़तालों को अनावश्यक बताकर हड़तालियों को हुड़दंगी कहने का कार्य करते हैं। उपन्यास के प्रारंभिक भाग में अधिकारों को लेकर गंभीर विवेचन किया गया है और यह बताया गया है कि जनता के एक बड़े वर्ग में अभी भी अधिकारों के प्रति जागरूकता आना शेष है –

"आज दुनिया कितना आगे बढ़ गई है, इसे नासमझ कहे जाने वाले लोग भी जान गए हैं। मज़दूर तो काफ़ी समझदार हो गये हैं, उन्होंने निश्चय किया है कि एक-एक आदमी भूख-प्यास से तड़प-तड़प कर जान दे देगा, लेकिन अधिकार पाये बिना मिलों के अन्दर क़दम न रखेगा।'/

'तो, कोई आशा है क्या?'/ 'आशा की बात नहीं उठती, जिस तरह भी हो हक प्राप्त करना है। जनता में हड़तालियों के लिए, अभी और सहानुभूति की ज़रूरत है।"[14]

---

[13] वही, पृ. 21.

[14] वही, पृ. 23.

मजदूर-किसानों के अधिकारों के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाइयों के प्रति सहानुभूति रखने वाला वर्ग केवल पढ़ा-लिखा शिक्षित व्यक्ति ही हो, यह आवश्यक नहीं है। यहाँ वर्गीय चेतना का प्रश्न भी सामने आता है। प्रायः दमन और शोषण के शिकार लोग अपने साथी शोषितों के साथ अग्रिम पंक्ति में खड़े नजर आते हैं, जबकि कई बार शिक्षित उच्च वर्गीय लोग शोषितों के अधिकारों के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाइयों को अनावश्यक हुड़दंग करार देते हैं। इसको उपन्यास में एक प्रसंग के माध्यम से समझा जा सकता है, जहाँ कपूर और पानवाले, इक्केवाले के बीच संवाद प्रस्तुत किया गया है –

“फिर तनिक ठहरकर कपूर ने कहा – हाँ, तुमने हड़ताल कमेटी को कुछ चंदा दिया?’

‘पंद्रह दिन हुए एक रुपया दिया था।’

‘एक रुपया और देना भाई! जब तक हड़ताल है कम-से-कम दो रुपया महीना तो देना ही। मैं इसलिए कह रहा हूँ कि अमीरों के मुहल्ले में तुम्हारी दूकान है, तुम दो रूपये मजदूरों को दे सकते हो।’

पान वाले ने झट से संदुकची खोली और एक रुपया निकाल कर कहा – ‘तो यह आप ही जमा करा दीजिएगा।”[15]

इस संवाद से स्पष्ट हो जाता है कि उस समय वर्गीय सह-अस्तित्व की चेतना प्रबल थी। दैनिक एक रुपया या कभी-कभी उससे भी कम कमाने वाला व्यक्ति हड़तालियों के लिए चंदे के रूप में एक रुपया दे देता है, क्योंकि वे अधिकारों की लड़ाई में संलग्न हैं। इससे अधिक वर्गीय भावना और अधिकारों के प्रति जागरूकता और क्या हो सकती है!

इक्केवाला जानता है कि "अब वह बख्त नहीं है कि अकेले काम चल जाए, सबको मिल-बैठकर रहना पड़ेगा।" यही मिल-बैठकर रहने की भावना वर्गीय चेतना को प्रबल बनाती है। कोई कुलीन वर्गीय व्यक्ति या सरकारी नौकर यह बात नहीं कह सकता था, क्योंकि उनके लिए मजदूरों के अधिकार कोई मायने नहीं रखते। यह कामगार वर्ग ही था, जिसमें मजदूर, किसान, पानवाले, इक्केवाले आदि शामिल थे और यही वर्ग ऐसी लड़ाइयाँ लड़ने में सक्षम था।

कामगार वर्ग को दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ती थी—एक साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध और दूसरी भारतीय कुलीन वर्ग के विरुद्ध। भारतीय कुलीन वर्ग कभी नहीं चाहता था कि कामगार वर्ग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो, क्योंकि इससे उनके हित प्रभावित होते थे।

वर्गीय चेतना का एक और पक्ष, जिसे स्पष्ट किया जाना आवश्यक है, यह है कि कामगार वर्ग में संघर्ष की चेतना उन्हीं में थी, जो कारखानों, मिलों और खेतों जैसे कार्यस्थलों पर कार्यरत थे। कुछ कामगार वर्ग के लोग मिल मालिकों, पूँजीपतियों और सरकारी नौकरों के घरों में भी कार्यरत थे, जैसे—दरबान, चपरासी आदि।

प्रायः यह देखा गया कि यह वर्ग अपने अधिकारों के प्रति उतना जागरूक नहीं रहा, जितना पहले वाला। ऐसा नहीं था कि इनके साथ शोषण नहीं होता था, लेकिन चूँकि इनके लिए संगठित होने की आवश्यक शर्त—एक कार्यस्थल पर

[15] वही, पृ. 24.

एकत्रित होना—पूरी नहीं होती थी,

अतः वे अपने अधिकारों से अनभिज्ञ ही रहे।

प्रथम तो उन्हें मजदूरों की हड़ताल की खबर ही नहीं मिल पाती थी, और यदि मिल भी जाती, तो उनके लिए यह समझना मुश्किल होता कि मजदूर अपने मालिकों के विरोध में हड़ताल क्यों कर रहे हैं! इसे उपन्यास में आए एक संवाद के माध्यम से समझा जा सकता है—

"चपरासी ने बीड़ी फेंक दी और ख़त लेकर अन्दर चला गया, तो दरवान ने शंकर से पूछा – 'बाबू साहव, ये हड़ताल क्यों चला रहे हो?'

'मज़दूर अपने हक़ चाहते हैं, भाई! उनसे मेहनत बहुत ली जाती है, पर तन्ख्वाह कम मिलती है, सो वे चाहते हैं कि उनके साथ न्याय किया जाय! और सेठ लोग कहते हैं कि नहीं, तन्ख्वाह नहीं बढ़ायेंगे, दस घण्टे काम लेंगे, छुट्टियाँ भी वही इनी-गिनी मिलेंगी। वे समझते हैं कि उनमें जान नहीं है। उन्हें भी मशीन समझ लिया है।"[16]

यहाँ "उन्हें भी मशीन समझ लिया है।" वाक्य से औद्योगिक क्रांति का स्याह पक्ष स्पष्ट रूप से सामने आ जाता है। मिल मालिकों के लिए पूँजी ही सबकुछ थी; उनके लिए मानवीय मूल्यों का कोई अर्थ नहीं था। मशीनें उन्हें पूँजी प्रदान करती थीं, और मजदूर भी यही कार्य करते थे। अतः यह समझना कठिन नहीं है कि मिल मालिक मजदूरों को भी मशीन समझने लगे।

मजदूरों के कार्य घंटों, उनकी मजदूरी, कार्यस्थल की परिस्थितियाँ और उनके अधिकारों के लिए किए गए संघर्षों को देखते हुए, पूँजीपति वर्ग का दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। ऐसे में यह कहना बिल्कुल गलत नहीं होगा कि "उन्हें भी मशीन समझ लिया है।"

स्वतंत्रता संग्राम के काल में दो प्रमुख विचारधाराएँ सक्रिय थीं—पहली, अहिंसा के माध्यम से देश को स्वतंत्रता दिलाने की विचारधारा, और दूसरी, हिंसा के मार्ग में विश्वास रखने वाली विचारधारा। इन दोनों विचारों के समर्थकों के बीच प्रायः मतभेद होते रहते थे।

अखिल भारतीय कांग्रेस के 1907 ई. के सूरत अधिवेशन के दौरान इन्हीं दो विचारधाराओं के कारण कांग्रेस में विभाजन हुआ। बाद में, गाँधी के आगमन के पश्चात "अहिंसा से स्वतंत्रता" का विचार और अधिक दृढ़ हुआ, किंतु अब भी ऐसे लोग थे, जो अहिंसा से स्वतंत्रता प्राप्त हो सकने में अविश्वास रखते थे। ऐसे व्यक्तियों को प्रायः 'क्रांतिकारी' या 'उग्रवादी' विशेषणों से परिभाषित किया जाता था।

गाँधी के विचार केवल अहिंसा तक सीमित नहीं थे, बल्कि उनका विचार-दायरा अत्यंत व्यापक था। स्वतंत्रता प्राप्ति

[16] पैरोल पर, ब्रजेन्द्र नाथ गौड़, लखनऊ : शिवाजी बुक डिपो, 1943. पृ. 33.

के उनके मार्ग में संयम, दूरदर्शिता और सावधानी की प्रमुख भूमिका थी। गाँधी ने कई बड़े आंदोलनों का नेतृत्व किया और आवश्यकतानुसार उन्हें स्थगित भी कर दिया, क्योंकि उनके अनुसार "अभी सही समय नहीं आया था।"

यह वह समय था, जब कई देशों ने साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष किया और सफल हुए। भारत के पास इन संघर्षों से सीखने के कई अवसर उपलब्ध थे। क्रांतिकारी विचारधारा के समर्थक उन देशों की क्रांतियों की राह को भारत में भी अपनाने के पक्षधर थे, किन्तु गाँधी का मानना था कि भारत की परिस्थितियाँ और सामाजिक संरचना ऐसी नहीं हैं कि उन तरीकों को जस-का-तस यहाँ लागू किया जा सके।

1942 ई. के संदर्भ में क्रांतिकारियों और गाँधी के विचारों की इस टकराहट पर रामविलास शर्मा लिखते हैं— “स्वाधीनता आन्दोलन के अनेक रुझान थे। अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन चलाओ किन्तु उनसे समझौता कर लेने की भी कोशिश करते रहो। यह सुधारवादी रुझान था। समझौते का रास्ता बंद करो, आन्दोलन क्रांतिकारी ढंग से चलाओ, मजदूरों और किसानों के अपने संगठन बनाओ, इन संगठनों के द्वारा स्वाधीनता आन्दोलन को अजेय बना दो, यह क्रांतिकारी रुझान था। इन

दोनों का आपस में टकराना अनिवार्य था।”[17]

भारत के लिए अपनाए जाने वाले साधनों के चयन में यह अत्यंत आवश्यक था कि वे भारत की परिस्थितियों के अनुकूल हों। गाँधी के इस मार्ग में संयम का विशेष महत्त्व था, क्योंकि वे स्वतंत्रता प्राप्ति को एक दीर्घकालिक और सुविचारित प्रक्रिया मानते थे। किन्तु, क्रांतिकारी तत्काल स्वतंत्रता प्राप्ति के पक्षधर थे। इन दोनों मार्गों में अत्यधिक अंतर होने के कारण इनके समर्थकों के मध्य प्रायः बहस छिड़ जाया करती थी।

इस उपन्यास में कपूर गाँधीवाद में विश्वास रखता है। जब 'गुप्त संगठन' के कार्यकर्ता उसे अपने साथ कार्य करने के लिए आमंत्रित करते हैं, तब यह बहस उभरकर सामने आती है— “शीला ने कहा – 'हमारा प्रान्त इस ओर शीघ्रता से आगे बढ़ रहा है मिस्टर कपूर! हम लोग गुप्त-रूप से संगठन कर रहे हैं। वहाँ हमारी पार्टी में तीन सौ से ज़्यादा ऐसे सदस्य हैं जो प्राणों को हथेली पर लेकर काम करने को तैयार हैं। देश अहिंसा से स्वतंत्र न होगा।

कपूर ने टोका – 'आप कैसे कहती हैं कि अहिंसा से देश स्वतंत्र न होगा?'

शीला ने कहा – 'इस वक्त मैं बहस न करूँगी। संसार का इतिहास मेरी बात के पक्ष में है। हम लोगों की इच्छा है कि हम देश भर में ज़ोरदार संगठन करके क्रांति का ऐलान करें, सन् सत्तावन जैसी ग़लती हम इसबार नहीं देखना चाहते, हमारी ओर शस्त्रों का निर्माण गुप्त रूप से हो रहा है। यू.पी. देश का सेन्टर है; यहाँ के लोग हमारी सफलता में हिस्सा बढाएँ, तो बहुत कुछ हो सकता है।'

---

[17] भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद, भाग-1. रामविलास शर्मा. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1982. पृ. 9.

कपूर अपनी जगह से उठा, उसने कहा – 'मैं आप लोगों की राय से सहमत नहीं हूँ। हमारा देश फ्रान्स या रूस नहीं, भारतवर्ष है। मैं आप लोगों से क्षमा चाहता हूँ, मैं ऐसे किसी काम में शरीक नहीं हो सकता, जो हिंसा का प्रचार करे।"[18]

'हमारा देश फ्रान्स या रूस नहीं, भारतवर्ष है' – इस वाक्य से स्पष्ट है कि भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के लिए उसकी परिस्थितियों के अनुरूप विचार करना आवश्यक था। उस समय यह चेतना प्रबल रूप से विद्यमान थी। अतः भारतीय स्वतंत्रता संग्राम अपने देश की विशिष्ट स्थितियों के अनुरूप लड़ा गया युद्ध था।

हाँ, यह अवश्य है कि अन्य देशों से सबक ग्रहण किए गए, परंतु उन्हें बिना सोच-विचार किए लागू नहीं किया गया। भारत के लिए पहले भारतीयता की पहचान आवश्यक थी। राष्ट्रीय चेतना की इस समझ का विकास उस समय तक हो चुका था।

स्वाधीनता की लड़ाई में प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक मान्यताएँ और आधुनिक विचार एक साथ कार्यशील थे। भारत, विभिन्न राज्यों में विभाजित होने के बावजूद, एक अखंड सांस्कृतिक इकाई के रूप में विद्यमान था—चाहे व्यक्ति गाँधीवादी हो या क्रांतिवादी।

प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में भी भारत को सांस्कृतिक रूप से एक इकाई के रूप में देखा गया था, न कि टुकड़ों में। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में महासागर तक की भूमि को 'भारत-भूमि' कहा गया है, जिसकी सांस्कृतिक महत्ता इतनी थी कि इसे भारतीयों के लिए स्वर्ग से भी श्रेष्ठ बताया गया।

उपन्यास में, जब कपूर कानपुर छोड़कर बनारस जाता है, तो वहाँ उसे जो कमरा मिलता है, उसमें प्रसिद्ध क्रांतिकारी अनिल कुमार रह चुके थे। यह जानकर कपूर प्रसन्न होता है और उस कमरे का गौर से निरीक्षण करता है। वह देखता है कि कमरे में एक ओर क्रांति के चिरंजीवी होने की पंक्ति अंकित है, जो पश्चिमी देशों में हुई क्रांतियों के प्रसिद्ध नारे 'Long Live Revolution' का अनुवाद थी, तो वहीं दूसरी ओर प्राचीन भारतीय उक्ति—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'—भी लिखी हुई थी।

यही भारत के स्वतंत्रता संग्राम की विशेषता थी—जहाँ आधुनिक क्रांतिकारी विचारधारा और प्राचीन भारतीय गौरवबोध, दोनों का समन्वय स्पष्ट रूप से दिखाई देता है – "सूट केस लेकर वह ज्यों ही कमरे से बाहर निकलने को हुआ कि दरवाज़े से ऊपर की दीवार पर पैन्सिल से लिखी चार पंक्तियों पर उसकी दृष्टि पड़ गई –

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'/ 'क्रान्ति चिरजीवी हो।'/ 'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।'/

[18] पैरोल पर, ब्रजेन्द्र नाथ गौड़, लखनऊ : शिवाजी बुक डिपो, 1943. पृ. 64-65.

'भावुकता जीवन की सहचरी है।"[19]

इन पंक्तियों को एकसाथ रखकर उपन्यासकार ने वर्तमान और अतीत के अटूट संबंध को व्यक्त करना चाहा है। साहित्य में अतीत और वर्तमान के संबंधों को स्पष्ट करते हुए राल्फ फॉक्स लिखते हैं, "हम अतीत को उसी रूप में परखते हैं जिस रूप में कि हमें जीवन उसे परखने के लिए बाध्य करता है, और हमारा यह जीवन न केवल हमारी विरासत से ही, बल्कि हमारे अपने समय के वर्ग-संघर्षों तथा आवेगों आवेशों से भी निर्धारित होता है।"[20]

इन चार पंक्तियों के माध्यम से भारतभूमि से प्रेम की भावना, क्रांति-चेतना, स्वतंत्रता के महत्त्व, अधिकारों की जागरूकता और मानवीय मूल्यों के प्रति संवेदनशीलता एक साथ देखी जा सकती है। यह स्वतंत्रता-संग्राम काल में लोगों की जागरूकता के स्तर को दर्शाता है, जब लोग अपने लिए आदर्श समझी जाने योग्य पंक्तियों को कमरे की दीवारों पर अंकित करने लगे, ताकि स्वतंत्रता के लिए लड़ी जा रही लड़ाई में दोगुने उत्साह के साथ सक्रिय रहा जा सके।

गांधीवादियों और क्रांतिकारियों के मार्गों में भले ही बुनियादी अंतर रहा हो, लेकिन दोनों का लक्ष्य एक ही था। यही कारण था कि इनमें आपसी आदर-सम्मान की भावना की कमी नहीं थी। कपूर गांधीवादी था, लेकिन वह प्रसिद्ध क्रांतिकारी अनिल कुमार के कार्यों एवं बहादुरी से बहुत प्रभावित था। वह उन्हें 'महामानव' की संज्ञा से विभूषित करता है, यह जानते हुए भी कि उनका रास्ता हिंसा का था। स्वयं जवाहरलाल नेहरू गांधीवादी होते हुए भी भगत सिंह और उनके साथियों के बलिदान की प्रशंसा करते हैं। इन दो विचारधाराओं के आपसी आदर-सम्मान की यह भावना अंग्रेजों के लिए असह्य थी। यही कारण था कि नेहरू द्वारा भगत सिंह की प्रशंसा में लिखे गए लेख को भी ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया। नेहरु ने लिखा है – "मैं उससे सहमत हूँ या नहीं, मेरे हृदय में भगत सिंह जैसे मनुष्य की वीरता और आत्मत्याग के लिए प्रशंसा भरी हुई है। भगत सिंह जैसी वीरता बहुत कम पाई जाती है। यदि वाइसराय चाहते हैं कि हम उनकी आश्चर्यजनक वीरता और उसके पीछे ऊँचे आदर्श की प्रशंसा न करें तो वो भूलते हैं। वे अपने हृदय से पूछें कि यदि भगत सिंह एक अंग्रेज़ होता और इंग्लैण्ड के लिए ऐसा कार्य करता तो उनके क्या भाव होते।"[21]

ठीक यही भावना उपन्यास में कपूर के अनिल कुमार के प्रति प्रकट हुए आदर के रूप में देखी जा सकती है – "'ग्रीक सोल्जर' के नाम से एनार्किस्ट पार्टी के सदस्यों में प्रख्यात अनिल कुमार का नाम कपूर के लिए अपरिचित नहीं है। उसके बारे में कपूर ने बहुत बार, बहुत सी बातें सुनी हैं। उसके मन में कई बार चाहना हुई कि वह उस महापुरुष के दर्शन कर सके, जिसने हुकूमत की ईंट से ईंट बजा देने की प्रतिज्ञा कर रखी है। जो अनेक षड्यन्त्रों के जन्मदाता, संयोजक और संचालक के

---

[19] वही, पृ. 74.

[20] उपन्यास और लोकजीवन, पहला हिंदी संस्करण. रैल्फ फॉक्स, अनु. नरोत्तम नागर. नई दिल्ली: पीपुल्स पब्लिशिंग हॉउस, 1957. पृ. 30.

[21] जेल से बाहर के आठ दिन, प्रतिबंधित साहित्य, रा.अ. नई दिल्ली, अवाप्ति संख्या. 438

रूप में फ़रार है, जिसके नाम इनामी-वारन्ट हैं और जिसकी खोज के लिए पुलिस मारी-मारी फिरा करती है।

कपूर ने मन ही मन उस कमरे को, उस कमरे की दीवारों को और उन दीवारों के बीच में कुछ दिन तक विकल-विश्राम करने वाले व्यक्ति की स्मृति को प्रणाम करने के भाव से मस्तक झुका दिया।"[22]

इन दो विरोधी विचारों को मानने वालों के बीच आपसी आदर-भावना होने के साथ ही तीखी बहसें भी होती थीं। क्रांतिकारी लोग गांधी को "देश का पथभ्रष्टक" कहने से नहीं चूकते थे, लेकिन गांधी के अनुयायी ऐसी आलोचनाओं को सुनने की सहनशीलता रखते थे। अतः आलोचनाओं के बावजूद टकराव की संभावना बहुत कम थी, क्योंकि राष्ट्रीयता की चेतना दोनों में समान रूप से सक्रिय थी –

"'बापू? दो हड्डियों का आदमी देश को अपनी मुट्ठी में किये हुए है और आप जैसे नौजवान ख़ामोश होकर उसके पीछे चलने में गौरव समझते हैं। यह नपुंसकता-सूचक भावना जब तक दूर न होगी तब तक आगे बढ़ने का ख़याल, ख़याल से भी, हलका रहेगा।' लाल ने कहा।

कपूर मुस्कराकर बोला – 'बापू ख़ुद जब गालियाँ सुनने का साहस रखते हैं, नाराज़ नहीं होते, तो हम लोग ही उनकी बुराई सुनके क्यों नाराज़ हों! आप उन्हें गालियाँ देकर खुश होते हैं तो हों...''[23]

स्वतंत्रता आंदोलन के काल में क्रांतिकारियों के प्रति लोगों में असीम श्रद्धा की भावना थी। गाँधीवादी कार्यक्रमों के लिए कांग्रेस को चंदा देने में तो लोग उत्साह से भाग लेते ही थे, क्रांतिकारी कार्यों के लिए भी कई बड़े सेठ-साहूकार और उद्योगपति गुप्त रूप से अपना सहयोग देते थे। इस उपन्यास में अमिता के पति रस्तोगी मिल मालिक हैं। वे प्रकट रूप में कांग्रेस के सदस्य भी थे, लेकिन क्रांतिकारी आंदोलनों के लिए भी आर्थिक सहयोग देते रहे। ऐसा सहयोग वे गुप्त रूप में देते थे क्योंकि सरकार की नज़र से बचकर रहना उनके लिए आवश्यक था। इसी प्रकार, ऐसे कई कांग्रेसी कार्यकर्ता और नेता भी थे जो गुप्त रूप से क्रांतिकारी संगठनों को आर्थिक एवं अन्य सहयोग देते रहते थे। इन अन्य सहयोगों में सबसे प्रमुख था क्रांतिकारियों को उनके फरारी के दिनों में आश्रय प्रदान करना। क्रांतिकारियों को किसी भी रूप में सहयोग देना लोग पुण्य का कार्य समझते थे। उपन्यास के एक प्रसंग में, जब कपूर और विजय के लिए वारंट निकाला जाता है, तब वे पुलिस की नज़रों से स्वयं को बचाकर बनारस पहुँचते हैं। वहाँ नारायण और नीलम उन्हें अपने घर में आश्रय प्रदान करते हैं। नारायण इस बात पर गर्व करता है कि वह ऐसे पिता का पुत्र है जिनके यहाँ क्रांतिकारी महीनों तक छिप सकते थे –

"'असली बात यह है कि मैं और विजय दोनों ही इस वक़्त फ़रारी के दिन गुज़ार रहे हैं। पुलिस हमारे पीछे पड़ी है और हम लोग जेल नहीं जाना चाहते। लखनऊ और कानपुर में तो हमारी खोज तेज़ी से हो ही रही है, पर मेरा ख़याल है कि

[22] पैरोल पर, ब्रजेन्द्र नाथ गौड़, लखनऊ : शिवाजी बुक डिपो, 1943. पृ. 72.

[23] वही, पृ. 83-84.

यहाँ की पुलिस भी ख़ामोश नहीं बैठी होगी, फिर भी तुम पर विश्वास करके मैं चला आया हूँ। अब हम लोगों की रक्षा का भार तुम्हारे ऊपर है।'

हँसकर नारायण बोला – 'तो इसकी चिन्ता क्यों करते हो? मैं तो उस बाप का बेटा हूँ भैया, जिसके यहाँ क्रान्तिकारी महीनों छिपे रहते थे। तुमने पहले क्यों न बताया कि तुम क्या हो, जो मैं तुम्हारे पैर छू लेता।'"[24]

स्वतंत्रता-संघर्ष के काल में क्रांतिकारियों से देशवासियों को बहुत उम्मीदें थीं। यही वजह थी कि उन्हें बम बनाने और अन्य क्रांतिकारी कार्यों के लिए उद्योगपति बड़ी मात्रा में गुप्त रूप से धनराशि देते थे। उपन्यास में एक स्थान पर अनिल कुमार का कथन है कि –

"'आज जौलाई की बारह तारीख़ हम लोगों की पार्टी के इतिहास में बहुत बड़ी जगह बनायेगी। गंगा के किनारे की यह ज़मीन और इसके मालिक हमारे लिए जो कुछ कर रहे हैं, वह सब को मालूम है, लेकिन वे हम लोगों का साथ क्यों दे रहे हैं और हमारे मिशन के लिए क्यों हज़ारों रुपए ख़र्च कर रहे हैं, यह मेरे और श्रीमती अमिता देवी के अलावा कभी कोई नहीं जान सकेगा, न किसी को जानने की ज़रूरत ही है। मैं यह भी बता दूँ कि इस वक्त, जब कि हमें सात लाख रुपये की ज़रूरत इस सूबे के लिये है तब, दूसरे सूबों की तरह हमें ट्रेन-डकैतियाँ नहीं करनी पड़ेंगी, बड़े-बड़े नेता हमारा साथ नहीं देंगे, क्योंकि हम हिंसा पर विश्वास करते हैं, लेकिन हमें भरोसा है कि हम लोग अपनी ताक़त के आसरे पर ही काम करेंगे और कामयाब होंगे। यहाँ हिन्दुस्तान के हरेक प्रान्त से आये हुए, वे बहादुर-व्यक्ति बैठे हैं, जिनके हाथो क्रांति का आरम्भ होगा, अभी हम दिन या तारीख की घोषणा नहीं करेंगे क्योंकि कुछ तैयारियाँ बाकी हैं।

'हमारे कुछ साथियों ने राय दी थी कि हम किसी विदेशी हुकूमत से सहायता की प्रार्थना करें, लेकिन इसे हम बुज़दिली समझते हैं, क्योंकि हमें अपने आप पर, अपनी योजना पर और अपनी कार्य- प्रणाली पर विश्वास है, हम जानते हैं कि हमारे काम में देर हो रही है, लेकिन इसकी वज़ह सिर्फ यही है कि हम अभी तैयार नहीं है, हालाँकि संगठित है।"[25]

इस कथन से स्पष्ट होता है कि क्रांतिकारी किसी भी प्रकार की विदेशी सहायता के लिए तैयार नहीं थे और वे विदेशी सहायता को बुझदिली समझते थे।

ऐसी विपरीत परिस्थितियों में भी, जब पुलिस हमेशा पीछे पड़ी रहती थी, पकड़े जाने पर कठोरतम सजा हो सकती थी, और किसी बड़े राष्ट्रीय नेता का भी साथ नहीं था, क्रांतिकारियों के हौसले कभी पस्त नहीं होते थे। उनके लिए देश हमेशा प्राथमिक रहा। कैद में रहने पर भी वे बाहर निकलकर पुनः क्रांतिकारी गतिविधियों को अंजाम देने की योजना बनाते रहते

[24] वही, पृ. 102.

[25] वही, पृ. 117-118.

थे।

जब कपूर को शंकर द्वारा की गई मुखबिरी के कारण पकड़ लिया जाता है और अनिल कुमार एवं विजय उसे जेल से छुड़ा लेते हैं, तब पुलिस फिर से कपूर को ढूंढने में जुट जाती है। अतः कपूर को कुछ दिन तक पुलिस की नजर से बचने के लिए अमिता के साथ उसके घर में रहने के लिए विवश किया जाता है, लेकिन उसका विद्रोही आचरण एवं देश के प्रति निष्ठा उसे शांत नहीं रहने देती। वह बार-बार अमिता से कहता है कि उसे मुक्त कर दे ताकि वह पुनः देशसेवा के कार्यों में जुट सके, लेकिन अमिता नहीं मानती। अंततः कपूर अमिता के घर से भाग जाता है – “कपूर देश के लिए जान की बाज़ी लगानेवाला ज़िन्दादिल सिपाही है उसे सुख-चैन नहीं है, इसलिए उसे सहारे की ज़रूरत है, उसे आश्रय की आवश्यकता है।

कपूर इस क़ैद से भी भागना चाहता है। उसके सामने न तो प्रेम का कोई मूल्य है और न घृणा का ही, वह न तो कठोरता से घबराता है, न सहानुभूति से आकर्षित होता है। उसके हृदय में तूफ़ान है। वह लक्ष्यहीन भावनाओं के आश्रित है। वह जानता है कि बढ़ना ही जीवन का लक्ष्य है। वह तूफ़ान को पसन्द करता था, धुआँधार कामों से उसे दिलचस्पी है।”[26]

इससे स्पष्ट रूप से कपूर के समर्पण भाव को समझा जा सकता है। राष्ट्र के लिए वह अपने प्रेम और अपनी सुविधा को छोड़कर, अपनी जान की परवाह किए बिना, पुनः राष्ट्र की स्वतंत्रता के महत्ती कार्य में जी-जान से जुट जाता है। कपूर को बंधन से इतनी नफरत हो जाती है कि अपनी प्रेमिका के घर पर सभी सुविधाओं के होते हुए भी वह बाहर निकलने के लिए बेचैन हो उठता है। उसके लिए देश पहले है, देश का कार्य पहले है, फिर आराम। जब तक देश परतंत्रता की बेड़ियों को काटकर उन्मुक्त नहीं हो जाता, तब तक कपूर के लिए यह संभव नहीं कि वह सुख की नींद सो सके। क्रांतिकारियों और देशभक्तों की यह समर्पण भावना ही थी, जिसके परिणामस्वरूप देश स्वतंत्रता की राह पर आगे बढ़ सका।

1942 ई. के आंदोलन में महिलाओं की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। यहाँ तक आते-आते महात्मा गाँधी के इस दिशा में किए गए विशेष प्रयासों के परिणामस्वरूप, राजनीतिक आंदोलनों में महिलाओं की उल्लेखनीय उपस्थिति दिखाई देने लगी थी। न केवल इतना ही, बल्कि 1942 ई. के आंदोलन में सैकड़ों महिलाओं ने राष्ट्र को स्वतंत्र कराने के लिए अपनी कुर्बानी दी थी – “...नागपुर की श्रीमती सखाराम, छपरा (बिहार) की बहुरिया रामस्वरूप देवी, सिवान के फुलेना प्रसाद की पत्नी तारा रानी श्रीवास्तव; बंगाल के तामलुक सब-डिविजन की 73 वर्षीय वृद्धा मातंगिनी हाजरा, असम की 14 वर्षीय किशोरी कनकलता, गाजीपुर की राधा देवी, बलिया की कुमारी जानकी, जौनपुर की श्रीमती इंगई और मोहारानी, कोल्हापुर की गंगा बाई, अमरावती की कुमारी कृष्णा, रायपुर की रुक्मणी, नरसिंहपुर की राधा बाई कटिया आदि को 1942 के आन्दोलन

[26] वही, पृ. 130-131.

की अमर शहीद नायिकाओं के रूप में याद किया जाता है।"[27]

उपन्यास में अमिता और शीला दो मुख्य महिला पात्र हैं। शीला को क्रांतिकारी गतिविधियों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए दर्शाया गया है। सभी क्रांतिकारी उसके आदेशों का पालन करते हैं और उसकी बनाई योजनाओं के अनुरूप कार्य करते हैं। अमिता के माध्यम से महिलाओं की त्याग भावना को चित्रित किया गया है। एक पूँजीपति मिल मालिक की पत्नी होते हुए भी अमिता की सहानुभूति मजदूर वर्ग के साथ होती है। वह अपने प्रभाव का इस्तेमाल करके अपने पति रस्तोगी को मजदूरों की सभी माँगें मानने के लिए विवश कर देती है। कपूर के प्रति उसका झुकाव भी कपूर की राष्ट्र के प्रति समर्पण भावना से प्रभावित होकर ही होता है। वह अंत तक क्रांतिकारियों को अपने घर में आश्रय देती है और अनिल कुमार को बचाने के प्रयास में मृत्यु को प्राप्त होती है।

आर्थिक चेतना भी राष्ट्रीय चेतना का ही एक अंग होती है। साम्राज्यवाद से ग्रसित राष्ट्रों की आर्थिक रीढ़ को साम्राज्यवादी सरकारों ने तोड़ ही डाला, साथ ही उस भूभाग में असमानता का जाल बिछाकर चले गए। अंग्रेजों ने अपने लाभ के लिए जहाँ तक आवश्यकता हुई, कुछ गिने-चुने हिन्दुस्तानियों को फायदा पहुँचाया, वहीं हिंदुस्तान के एक बड़े हिस्से पर कर और लगान का बोझ बढ़ा दिया, देश की संपत्ति को लूट लिया तथा देशवासियों के लिए बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न कर दी, जिससे भुखमरी बढ़ने लगी। ऐसी स्थिति में देशवासियों के सामने रोटी का प्रश्न सबसे बड़ी समस्या बनकर उभरा। लगातार पड़ने वाले कृत्रिम अकालों ने लाखों लोगों की जीवनलीला समाप्त कर दी। दिन-ब-दिन बढ़ती बेकारी और भुखमरी से लोग बेहाल थे, ऊपर से देश को विश्व युद्ध के संकट में ढकेल दिया गया, जिसका भारत से कोई लेना-देना नहीं था। 'भारत छोड़ो आंदोलन' ऐसी ही परिस्थितियों की उपज था।

उपन्यास में कपूर के माध्यम से तत्कालीन समय की आर्थिक चिंताओं को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है – "सब ज़रूरतमन्द हैं, ज़रूरत भी ऐसी जिसकी उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता। जिसके बिना काम चल ही नहीं सकता। कौन ऐसा आदमी है, जो भूखा रह सके, जो अपने बच्चों और स्त्रियों को भूख से बिलखते, दम तोड़ते देख सके!

भूख! भूख!! भूख!!! लेकिन समस्या हल कैसे हो? चाहे आस्तिक अपने देवताओं की मूर्तियों को नष्ट करके, अपनी किस्मत को आरी से चिरवा दे; चाहे नास्तिक रात-दिन मेंहनत करे; चोरी, झूठ, जाल, फ़रेब, के चक्कर में रहे; चाहे अँग्नास्टिक थकी आँखों से दोनों ओर देखे, लेकिन लाभ? आस्तिक, नास्तिक और अॅग्नास्टिक सभी की समस्या, विचार अलग होने पर भी, एक ही है – भूख! भूख!! भूख!!!"[28]

देश में व्याप्त असमानता अपने चरम पर थी। चालीस करोड़ भारतीय जनता का एक बहुत छोटा हिस्सा धन के एक

---

[27] 'भारत छोडो आन्दोलन और महिलाएँ' लेख, आशारानी वोहरा, धर्मयुग (9-15 अगस्त, 1987). पृ. 60-61.

[28] पैरोल पर, ब्रजेन्द्र नाथ गौड़, लखनऊ : शिवाजी बुक डिपो, 1943. पृ. 136-138.

बहुत बड़े भाग पर एकाधिकार जमाए बैठा था। देश आर्थिक दुर्दशा से जूझ रहा था। ऐसी स्थिति में तत्कालीन साहित्यकारों ने उन परिस्थितियों का चित्रण पूरी ऊर्जा के साथ किया, जिससे देश के भूखे, नंगे, गरीब, असहाय और दीन-दुखी जन ब्रिटिश सरकार के खिलाफ मुखर होकर विरोध का स्वर बुलंद कर सकें। दुनियाभर में क्रांतियाँ आर्थिक बदहाली की स्थितियों की उपज के रूप में ही आई थीं, अतः उपन्यासकार ने देश की आर्थिक बदहाली का चित्रण पूरे मनोयोग से किया है।

राष्ट्र को स्वतंत्रता दिलाने के लिए राष्ट्र के नागरिकों को पराधीनता के कष्टों का आभास होना आवश्यक है। दो सदियों से गुलामी की शिकार भारत की जनता न तो अपने कष्टों को देख पा रही थी और न ही उन्हें इस बात का ज्ञान था कि इन कष्टों से छुटकारा पाया भी जा सकता है। यहीं पर साहित्यकारों की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। राष्ट्रवादी साहित्यकारों ने देश की आर्थिक शोचनीय स्थिति को पूरी तल्लीनता से चित्रित करने का कार्य किया है। उपन्यास में कपूर की मानसिक अवस्थिति के बहाने उपन्यासकार ने आर्थिक बदहाली और असमानता के इस दंश का प्रभावकारी चित्रण किया है –

"कपूर के मन में विद्रोह की आग धधक रही है, लेकिन वह जानता है कि यह विद्रोह व्यर्थ है, आग बहुत जल्द बुझ जायेगी, क्योंकि वह अकेला है; साथी हों, अनिल बाबू की पार्टी हो, और भी सौ-दो-सौ, हज़ार-दो-हज़ार, बीस हज़ार, लाख, पचास लाख व्यक्ति उसके साथ हों, वे भी अपने दिलों में ऐसी ही विद्रोही भावनाओं का अनुभव करें, तब भी क्या होगा! चालीस करोड़ की आबादी वाले मुल्क को चारों ओर से उठनेवाली तूफ़ानी लपटें घेरे ले रही हैं; ऐसी स्थिति में क्या रोटी-कपड़े की ख़ास समस्या और देश के बचाव का महत्त्वपूर्ण प्रश्न दो-चार लाख आदमी हल कर सकते हैं? सभी के लिये समस्या एक है; सभी की चाहना, सभी की आशा एक है और वह है समानता! चालीस करोड़ में कमज़ोर मेहनतकश हैं, फटे कपड़े पहननेवाले बेकार हैं, आधे पेट खाने वाले इज्ज़तदार हैं, भूख से तड़पते हुए कंगाल हैं, साथ ही कारों पर घूमने वाले पूँजीपति भी हैं; पर चैन किसे है? युग ने सबके सामने एक सी समस्याओं को लाकर खड़ा कर दिया है।"[29]

इस उपन्यास के कई सकारात्मक पक्षों के इतर कुछ ऐसे पक्ष भी हैं जो इसे कमजोर बनाते हैं। स्वतंत्रता के संघर्ष में संलग्न देश के लिए ऐसे साहित्य की आवश्यकता होती है, जिसका नायक उत्साह से भरा हुआ हो और पराजय से सीख लेकर पुनः संकल्पबद्ध होकर रणक्षेत्र में उतर आए। लेकिन पूरे उपन्यास में संघर्षरत नायक कपूर, उपन्यास के अंत तक आते-आते ऐसा प्रतीत होता है मानो वह हार मान चुका हो और पलायनवादी हो गया हो। वह पलायन के गीत गाने लगता है –

"उसने एक गहरी साँस-सरसराती हुई हवा में, छोड़ दी। सिगरेट का कश लिया, धुआँ छोड़ा और हवा के झोंकों की सिहरन का अनुभव करते हुए, गुनगुनाने लगा। उसका स्वर लेकर हवा चारों ओर भागने लगी। वह गाता ही रहा –

[29] वही, पृ. 140-141.

कौन सुख के गीत गाये? कौन भूखों और नंगों, का सिसकता दुःख बताएं?

दिन ढला मेरा डगर में, हो गई रे, शाम। और मुझको अभी चलना, है कहाँ आराम?

रुक गए साथी डगर में, मैं अकेला ही चलूँगा! थक गए साथी डगर में, मैं अकेला ही जलूँगा।

दूर है मंजिल, जहाँ, आकाश नित मोती लुटाता। एक आशा के सहारे, कौन मेरे साथ आता!

मैं अकेला चल रहा हूँ, मैं अकेला चल रहा हूँ।

कौन मेरे साथ आये? कौन सुख के गीत गाये?”[30]

उपन्यास में भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान हुई हिंसा का भी चित्रण किया गया है। आंदोलन के समय, जब कांग्रेस के सभी नेताओं को जेल में बंद कर दिया गया था, क्रोधित जनसमूह सक्षम नेतृत्व के अभाव में हिंसात्मक गतिविधियों में लिप्त हो गया। तोड़फोड़ हुई, आगजनी हुई, कई स्थानों पर जेलों को तोड़ दिया गया, और सरकारी अधिकारियों के साथ मारपीट की गई। इन सभी घटनाओं का चित्रण करके उपन्यासकार ने जनता के आक्रोश की तीव्रता को दर्शाने का प्रयास किया है, जिससे शोषित एवं दमित भारतीय जनता दोगुने उत्साह के साथ संघर्ष के मैदान में उतर सके –

“...चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है, भड़की हुई गुमराह जनता द्वारा ट्रेनों में आग लगाई जा रही है, स्टेशनें नष्ट की जा रही है, पोस्ट ऑफिस और साथ ही रुपएवाले लूटे जा रहे हैं, जगह-जगह बम फेंके जा रहे है, विद्यार्थी और मज़दूर हड़तालें कर रहे हैं, अदालतों को, पुलिस और सिविलगाड्र्स के दफ़्दरों को, नष्ट किया जा रहा है, अनाज और कपड़े की लूट हो रही है, जेलों तक को तोड़ा-फोड़ा जा रहा है, पुलिस और फ़ौज़वालो पर हमले किये जा रहे हैं, अपनी अदालतें खोली जा रही है, सरकार की ओर से इन सब अनुचित कार्यवाहियों का दमन किया जा रहा है, गोलियाँ चलाई जा रही है, निर्दोष-व्यक्तियों को भी लपेट में आना पड़ रहा है, धड़ल्ले से गिरफ्तारियाँ हो रही हैं।”[31]

एक साम्राज्यवादी सरकार, जिसके पक्ष में वे सभी कारक मौजूद थे जिन्हें मजबूत कहा जा सकता है, के विरुद्ध एक पराधीन राष्ट्र के नागरिकों की लड़ाई—ऐसा राष्ट्र, जिसके नागरिक गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा और असमानता जैसी बिमारियों से बुरी तरह ग्रसित थे—में नाउम्मीदी के बादलों का छा जाना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। लेकिन यह भारत के उन सभी जुझारू एवं कर्मठ देशभक्तों और क्रांतिकारियों के अथक परिश्रम का ही परिणाम था कि भारत के ऊपर से पराधीनता की काली छाया हट सकी। यह राह बिल्कुल आसान नहीं थी, लेकिन राष्ट्रभक्तों का उत्साह भी किसी तरह कम नहीं था, “आज़ादी के सपने देखने वाले और आज़ादी की आशा लेकर चलने वाले, परतंत्र-देश के यात्री को जीवन भर विश्राम

30 पैरोल पर, ब्रजेन्द्र नाथ गौड़, लखनऊ : शिवाजी बुक डिपो, 1943. पृ. 142.

31 वही, पृ. 146-147.

नहीं है, उसके सामने ख़त्म न होनेवाला रास्ता पड़ा है। रास्ते में ठहरने के लिए न कोई मुकाम है, न शाम होने का भरोसा; सिर्फ़ न खत्म होनेवाला दिन ही उसका साथी है, मंज़िल कहाँ है, यह मालूम होने पर भी उसे चलते रहना है, लेकिन रास्ते का अन्त न हो सकेगा, जब तक कि मुल्क गुलामी की अज़हद मज़बूत जंजीरों में जकड़ा हुआ मुक्ति का इन्तज़ार करता है। इस रास्ते पर बहुत से मुसाफ़िर चल रहे हैं, मंजिल तक पहुँचने के विभिन्न कार्यक्रम और रास्ते उनके सामने हैं, लेकिन अनिल उन सब मुसाफ़िरों से भिन्न है, उसका रास्ता भी सबसे जुदा है, जो कि किसी को मालूम नहीं।”[32]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ‘पैरोल पर’ उपन्यास में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति कई रूपों में सामने आती है। इस उपन्यास में राजनीतिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक चेतना और आर्थिक चेतना के सभी तत्त्व विद्यमान हैं। ये सभी वास्तव में राष्ट्रीय चेतना के ही अंग हैं। अंततः सभी कृत्य राष्ट्र की मुक्ति और राष्ट्र की खुशहाली के लिए ही किए जा रहे थे। राष्ट्र को स्वाधीन बनाने के लिए किए जाने वाले संघर्ष के काल में, एक साम्राज्यवादी और पूँजीवादी हितों को पोषित करने वाली सरकार द्वारा किसी साहित्य को प्रतिबंधित किया जाना ही इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि उस साहित्य में राष्ट्र के हित की बात किस प्रकार की गई होगी।

[32] वही, पृ. 152.